1934G Syadvad in Indian Thought

Syadvad in Jinetar Darshan (In Jain Darshan, September 1934)

(Reprinted later in Chandabai Abhinandan Granth, Prakarat Vidya)

जैनेतर दर्शनों में स्याद्वाद

पं० श्री हीरालाल जैन, शास्त्री

जैनेतर दर्शनों में तद्विषयक विद्वानों ने स्याद्वाद को कहाँ तक और किस रूप में अपनाया है इस बात के बताने के पूर्व "स्याद्वाद" शब्द का लक्षण समझ लेना आवश्यक है; क्योंकि उसी लक्षण के सहारे ही हम अजैन दर्शनों में स्याद्वाद का अन्वेषण कर सकेंगे ।

स्याद्वाद का स्वरूप—

स्याद्वाद शब्द एकान्त या सर्वथापन का निषेधक और अनेकता का सूचक है । स्याद्वाद का अर्थ होता है—पदार्थ का भिन्न-भिन्न दृष्टियों से (अपेक्षाओं से) परीक्षण कर निर्णय करना । क्योंकि सर्वथा एक ही दृष्टि से पदार्थ का सर्वाङ्ग निर्णय नहीं हो सकता । इसीलिए जैनाचार्यों ने सबसे प्रथम "सिद्धिरनेकान्तात्" अर्थात् "वस्तु तत्त्व की सिद्धि अनेकान्त-स्याद्वाद से ही हो सकती है" अन्यथा नहीं, की घोषणा की ।

अनेकान्तवाद, अपेक्षावाद, कथंचित्वाद और स्याद्वाद ये सब एकार्थवाची शब्द हैं । 'स्यात्' शब्द का अर्थ 'कथंचित्' किसी अपेक्षा से होता है । संस्कृत भाषा के अनुसार 'स्यात्' यह अन्वय है और वह अनेकान्त का द्योतक एवं सर्वथापन का निषेधक है । जैसा कि विद्यानन्द स्वामी ने कहा है—

स्यादिति शब्दोऽनेकान्तद्योती प्रतिपत्तव्यो, न पुनर्विधिविचारप्रश्नादिद्योती तथा विवक्षापायात् ।।
अष्टसहस्री पृ० २८६ ।

अकलंक देव ने भी स्याद्वाद का पर्यायवाचक अनेकान्त का लक्षण इस प्रकार किया है—
'सदसन्नित्यादिसर्वथैकान्तप्रतिक्षेपलक्षणोऽनेकान्तः । अष्टशती पृ० २८६ ।

पंचास्तिकाय की टीका में अमृतचन्द्र सूरि ने भी कहा है—
'सर्वथात्वनिषेधकोऽनेकान्तताद्योतकः कथंचिदर्थे स्याच्छब्दो निपातः।'

स्वामी समन्तभद्राचार्य ने अपने सुप्रसिद्ध देवागम स्तोत्र में स्याद्वाद का क्या सुन्दर लक्षण किया है—

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात् किंवृत्तचिद्विधिः ।
सप्तभंगनयापेक्षो हेयादेय विशेषकः ।।

स्याद्वाद सर्वथा एकान्त का त्याग—निषेध करके कथंचित् अपेक्षा भेद से वस्तुतत्त्व का निर्णय करता है और वही ही सप्तभंगी रूप नयों की अपेक्षा से स्वभाव और परभाव द्वारा वस्तु में सत्-असत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक और सामान्य-विशेष की व्यवस्था का प्रतिपादन करता है।

स्याद्वाद की उपयोगिता—

वस्तु के यथार्थ स्वरूप निर्णय के लिए स्याद्वाद का उपयोग सर्वप्रथम है। बिना इसके वस्तु का निर्णय नहीं हो सकता। यदि हम किसी वस्तु को उसके किसी एक धर्म की मुख्यता से एक ही रूप में मान लें और उसके समस्त धर्मों का अपलाप कर दें, तो संसार का व्यवहार तक नहीं चल सकता, वस्तु का निर्णय तो बहुत दूर की बात है। उदाहरणार्थ—यदि हम किसी मनुष्य को 'मामा' कहते हैं, तो क्या वह संसार के सभी मनुष्यों का मामा है? उत्तर में कहना पड़ेगा कि नहीं। किसी की अपेक्षा से वह चाचा भी है, किसी की अपेक्षा से भाई भी है। इसी प्रकार एक अखण्ड अनन्त धर्म रूप वस्तु को भी किसी एक धर्म की मुख्यता से उसे एक रूप कहना अयुक्त है, किन्तु भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से उसे नाना रूप ही मानना सर्वथा न्यायसंगत है।

इतनी प्रारम्भिक भूमिका के बाद अब मैं अपने विषय पर आता हूँ। और भिन्न-भिन्न दर्शनों के ग्रन्थों का अवतरण देकर यह दिखाने का यत्न करूँगा कि भारतीय प्रसिद्ध जैनेतर विद्वानों ने भी "स्याद्वाद" का अपने यहाँ कहाँ तक उपयोग किया है।

नित्यानित्य विचार—

जैन-दर्शन की दृष्टि से प्रत्येक वस्तु द्रव्य अपेक्षा नित्य एवं पर्याय अपेक्षा अनित्य है। पर्याय-उत्पाद और व्यय स्वभाव वाली होती हैं जो कि वस्तु में अनित्यता सिद्ध करती हैं। साथ ही उत्पाद व्यय से वस्तु में हमें उसकी स्थिति की ध्रुवता का भी प्रत्यक्ष अनुभव होता है। यही स्थिरता ध्रुवता वस्तु में नित्य धर्म का अस्तित्व सिद्ध करती है। इस प्रकार संक्षेप में वस्तु उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त हुआ करती है। जैसा कि उमास्वामी ने कहा है—"उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।"

पतञ्जलि महाभाष्य—

महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य के पशपशाह्निक में जैन-दर्शन के उक्त सिद्धान्त का निम्न-लिखित शब्दों में कितना अच्छा विवेचन किया है—

द्रव्यं नित्यमाकृतिरनित्या, सुवर्णं कयाचिदाकृत्या युक्तं पिण्डो भवति, पिण्डाकृतिमुपमृद्यरुचकाः क्रियन्तेरुचकाकृतिमुपमृद्यकटकाः क्रियन्ते, कटकाकृतिमुपमृद्य स्वस्तिकाः क्रियन्ते, पुनरावृत्तः स्वर्णपिण्डः पुनरपरयाऽऽकृत्या युक्तः खदिरांगारसदृशे कुण्डले भवतः आकृतिरन्याचान्याच भवति द्रव्यं पुनस्तदेव, आकृत्युपमर्देन द्रव्यमेवावशिष्यते।

मीमांसा श्लोक-वार्तिक——

मीमांसा दर्शन के उद्भट विद्वान कुमारिलभट्ट ने भी पदार्थों के इस उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप को स्वीकार किया है; देखिये——

१. वर्द्धमानकभंगे च, रुचकः क्रियते यदा ।
तदा पूर्वार्थिनः शोकः, प्रीतिश्चाप्युत्तरार्थिनः ।।

२. हेमार्थिनस्तु माध्यस्थ्यं तस्माद्वस्तु त्रयात्मकम् ।
नोत्पादस्थितिभंगानामभावे स्यान्मतित्रयम् ।।

३. न नाशेन बिना शोको, नोत्पादेन बिना सुखम् ।
स्थित्या बिना न माध्यस्थ्यं तेन सामान्यनित्यता ।।

मीमांसा श्लोकवार्तिक पृ० ६१९ श्लोक सं० २१, २२, २३ ।

कुमारिलभट्ट का उक्त सिद्धान्त जैन-दर्शन के तो अनुकूल है ही, साथ ही वह वर्णनशैली में भी स्वामी समन्तभद्राचार्य का कितना अधिक अनुकरण करता है, यह देवागमस्तोत्र के निम्नलिखित श्लोकों से स्पष्ट विदित हो जाता है । पाठकों को इस बात का ध्यान रहे कि कुमारिलभट्ट से स्वामी समन्त-भद्र तीन-चार शताब्दी पूर्व हो चुके हैं । इससे निश्चित है कि स्वामी समन्तभद्र के समन्त-भद्र-स्याद्वाद का प्रभाव उस समय के सभी दर्शनों पर पड़ा था । अस्तु, वे श्लोक ये हैं——

१. घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम् ।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम् ।।५९।।

२. पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः ।
अगोरसव्रतो नोभे, तस्मात्तत्त्वं त्रयात्मकम् ।।६०।। देवागमस्तोत्र

गंभीर निरीक्षण से पाठक यह अनुभव किये बिना न रहेंगे कि स्वामी समन्तभद्र के सूत्रा-त्मक श्लोकों की व्याख्या रूप ही कुमारिलभट्ट ने व्याख्यान किया है ।

सत्-असत्-विचार——

सम्पूर्ण चेतन और अचेतन पदार्थ, स्वरूप से——स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से सत् हैं और पर-रूप से——परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से असत् स्वरूप हैं । जैसे घट अपने द्रव्य पुद्गल मृत्तिका, क्षेत्र इस स्थान, काल वर्तमान एवं भाव लाल काला आदि की अपेक्षा से तो हैं——सत् स्वरूप है–और वहीं पर से–अन्य पटादिक के द्रव्य क्षेत्र काल भाव से –नहीं है, असत् रूप है । दोनों में से किसी एक रूप मानने से वस्तु या तो सर्वात्मक हो जायगी, अथवा लोक-व्यवहार का अभाव हो जायगा । इसलिए दोनों रूप ही वस्तु को मानना आवश्यक है । इसीलिए श्री समन्तभद्राचार्य ने कहा है कि——

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात् ।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ।।१५।।

इस श्लोक का अन्तिम चरण बहुत महत्त्व का है, आचार्य कहते हैं कि यदि उभयात्मक वस्तु न मानोगे, तो पदार्थ की व्यवस्था ही नहीं हो सकती है।

वैशेषिक-दर्शन—

महर्षि कणाद ने अन्योन्याभाव के निरूपण में भी उक्त उभय रूप वस्तु को ही स्वीकार किया है—

सच्चासत्। यच्चान्यदसदतस्तदसत्।

वैशेषिक दर्शन अ० ९ आ० १ सूत्र ४, ५

उपस्कार—यत्र सदेव घटादि असदिति व्यवह्रियते, तत्र तादात्म्याभावः प्रतीयते। भवति हि असन्नश्वो गवात्मना। असत् गौरश्वात्मना, असन् पटो घटात्मना इत्यादिः। पृ० ३१३

भाष्य—तदेवं रूपान्तरेण सदप्यन्येन रूपेणासद् भवतीत्युक्तम्॥ पृ० ३१५

न्याय-दर्शन—

गौतम ऋषि के न्याय-सूत्रों पर अनेकों प्राचीन एवं अर्वाचीन टीकाएँ उपलब्ध हैं जिसमें वैदिक वृत्ति में "कर्म से उत्पन्न होने वाले फल उत्पत्ति के पूर्व सत् हैं अथवा असत् ?" इस प्रश्न के उत्तर में लिखा है कि 'उत्पादव्ययदर्शनात्' न्या० ४–१–४९

व्याख्या—प्राङ् निष्पत्तेः सदसदिति चानुवर्तते फलसम्बन्धात् पूर्ववत् निष्पत्तेः प्राक् फलं कार्यं, सदसदिति वेदितव्यम्। कुतः उत्पादव्ययदर्शनात्, तदुत्पत्तिविनाशयोरुपलभ्यमानत्वात्। चेदुत्पत्तेः प्राक् कार्यमसद् भवेत् न जातूत्पद्येत्। असतः शशशृंगादेरुत्पत्त्यदर्शनात्। सच्चेत् न कदाचिद्विनश्येत्। पुरस्तात् सतः पश्चादपि सत्त्वनियमेन विनाशासंभवात्। उत्पद्यते विनश्यति च कार्यं, तस्मात् भवति प्रतिपत्तिर्नूनमेतदुत्पत्तेः प्राक् नासदस्ति, नापि सत्, किन्तु सदसदिति ॥४९॥ वैदिकी वृत्तिः॥

पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि कितने उत्तम प्रकार से वृत्तिकार ने सत्-असत्-उभयात्मक वस्तु को स्वीकार किया है, जो कि जैन-दर्शन के बिल्कुल अनुरूप ही है।

भेदाभेद-विचार—

द्रव्य से पर्याय, गुण से गुणी अथवा धर्म से धर्मी कथंचित् अपने संज्ञा लक्षणादि से भिन्न है, और आधारादि की अपेक्षा अभिन्न है। यह जैन-दर्शन का प्रसिद्ध कथन है। इसीको स्वामी समन्तभद्र ने कहा है—

प्रमाणगोचरौ सन्तौ, भेदाभेदौ न संवृती।
तावेकत्वाविरुद्धौ ते गुणमुख्यविवक्षया ॥३६॥

एक वस्तु में किसी दृष्टि से भेद एवं किसी दृष्टि से अभेद प्रमाणसिद्ध ही हैं, काल्पनिक नहीं। हाँ, इनमें कभी कोई प्रधान तो दूसरा गौण हो जाता है।

वेदान्त-दर्शन--

व्यास-प्रणीत ब्रह्म-सूत्रों पर भास्कराचार्य-रचित भाष्य में भेदाभेद का विचार करते हुए "युक्तेः शब्दान्तराच्च" (२-१-१८) सूत्र पर लिखा है--

अवस्था तद्वतोश्च नात्यन्तभेदो नहि शुक्ल-पटयोर्धर्मधर्मिणोरत्यन्तभेदः, किन्तु एकमेव वस्तु, नहि निर्गुणं नाम द्रव्यमस्ति, न हि निर्द्रव्यो गुणोऽस्ति, तथोपलब्धेः, उपलब्धिश्च भेदाभेदव्यवस्थायां प्रमाणं प्रमाणव्यवहारिणाम् तथा कार्यकारणयोर्भेदाभेदावनुभूयेते, अभेदधर्मश्च भेदो यथा महोदधेरभेदः स एव तरंगाद्यात्मनां वर्तमानो भेद इत्युच्यते। न हि तरंगादयः पाषाणादिषु दृश्यन्ते। तस्यैव ताः शक्तयः, शक्ति-शक्तिमतोश्चानन्यत्वमन्यत्वं चोपलभ्यते। पृ० १०१

अद्वैतवाद--

अद्वैत जैसे अभिन्नवाद में भी भेदाभेद की चर्चा का स्पष्ट वर्णन देखने में आता है। विद्यारण्य स्वामी अपने ग्रन्थ में कार्यकारण का विचार करते हुए लिखते हैं--

स घटो नो मृदो भिन्नो, वियोगे सत्यवीक्षणात्।
नाप्यभिन्नः पुरा पिण्डदशायामनवेक्षणात्॥ श्लोक ३५५

कितने स्पष्ट शब्दों में भेदाभेद को स्वीकार किया है।

सामान्य-विशेष-विचार--

यद्यपि सांख्य, अद्वैतवादी एवं और भी अनेक मत सामान्य रूप ही पदार्थ को स्वीकार करते हैं और बौद्धादिक विशेष रूप ही पदार्थ को स्वीकार करते हैं; किन्तु अनुभव, तर्क एवं आगम बताता है कि यथार्थ में पदार्थ सामान्य-विशेषात्मक उभयरूप हैं। एक रूप मानने पर दोनों का ही अभाव सिद्ध हो जाता है। इसीलिए आचार्यों ने पदार्थ को सामान्य-विशेषात्मक उभयरूप माना है--

सामान्य-विशेषात्मा तदर्थो विषय :। परीक्षामुख अ० ४ सू० १

अर्थात्--सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ ही प्रमाण का विषय है। इसी बात का उल्लेख पतञ्जलि-भाष्य में भी है। जैसे--सामान्य-विशेषात्मनोऽर्थस्य। समाधिपा० सू० ७
सामान्य-विशेषसमुदायो द्रव्यम्। (विभू० सू० ४४)

कुमारिलभट्ट ने भी सामान्य विशेष रूप वस्तु को स्वीकार किया है। यथा--

सर्ववस्तुषु बुद्धिश्च, व्यावृत्यनुगमात्मिका।
जायते द्वयात्मकत्वं न, विना सा च न सिद्धयति॥५॥

अन्योन्यापेक्षिता नित्यं, स्यात्सामान्यविशेषयोः ।
विशेषाणाञ्च सामान्यं, ते च तस्य भवन्ति हि ॥६॥
निर्विशेषं हि सामान्यं, भवेच्छशविषाणवत् ।
सामान्यरहितत्वाच्च, विशेषास्तद्वदेव हि ॥७॥
तदनात्मकरूपेण, हेतू वाच्याविमौ पुनः ।
तेन नात्यन्तभेदोपि, स्यात्सामान्यविशेषयोः ॥ (पृ० ५४६, ४७, ४८)

इन उद्धरणों से यह बिल्कुल स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि जैन-दर्शन के स्याद्वाद-मार्तण्ड की प्रखर किरणें सर्व ही दर्शनों में निरावाध रूप से प्रकाशित हो रही हैं ।

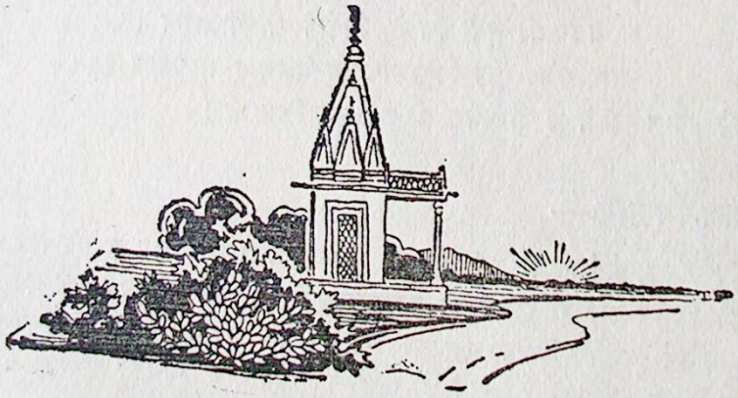

जैनेतर दर्शनों में स्याद्वाद

[ले०—श्रीमान् पं० हीरालाल जी न्यायतीर्थ, उज्जैन]

जैनेतर दर्शनों में तद्विषयक विद्वानों ने स्याद्वाद को कहां तक और किस रूप में अपनाया है इस बात के बताने के पूर्व "स्याद्वाद" शब्द का लक्षण समझ लेना आवश्यक है। क्योंकि उसी लक्षण के सहारे ही हम अजैन दर्शनों में स्याद्वाद का अन्वेषण कर सकेंगे।

स्याद्वाद का स्वरूप

स्याद्वाद शब्द एकान्त या सर्वथापन का निषेधक और अनेकता का सूचक है। स्याद्वाद का अर्थ होता है—पदार्थ का भिन्न भिन्न दृष्टियों से (अपेक्षाओं से) परीक्षण कर निर्णय करना। क्यों कि सर्वथा एक ही दृष्टि से पदार्थ का सर्वाङ्ग निर्णय नहीं हो सकता। इसीलिए जैनाचार्यों ने सब से प्रथम "सिद्धिरनेकान्तात्" अर्थात् "वस्तु तत्व की सिद्धि अनेकान्त-स्याद्वाद से ही हो सकती है" अन्यथा नहीं, की घोषणा की।

अनेकान्तवाद, अपेक्षावाद, कथंचित्वाद और स्याद्वाद, ये सब एकार्थवाची शब्द हैं। 'स्यात्' शब्द का अर्थ 'कथंचित्, किसी अपेक्षा से' होता है। संस्कृत भाषा के अनुसार 'स्यात्' यह अव्यय है और वह अनेकान्त का द्योतक एवं सर्वथापन का निषेधक है। जैसाकि विद्यानन्द स्वामी ने कहा है—

स्यादिति शब्दोऽनेकान्तद्योती प्रतिपत्तव्यो, न पुनर्विधिविचार प्रश्नादिद्योती तथा विवक्षा पायात्।

—अष्टसहस्री पृ० २८६

अकलङ्कदेव ने भी स्याद्वाद का पर्यायवाचक अनेकान्त का लक्षण इस प्रकार किया है—

"सदसन्नित्यादि सर्वथैकान्त प्रतिक्षेप लक्षणोऽनेकान्तः। —अष्टशती पृ० २८६।

पंचास्तिकाय की टीका में अमृतचन्द्रसूरि ने भी कहा है—

"सर्वथात्व निषेधकोऽनेकान्तता द्योतकः कथंचिदर्थे स्याच्छब्दो निपातः"।

स्वामी समन्त भद्राचार्य ने अपने सुप्रसिद्ध देवागम स्तोत्र में स्याद्वाद का क्या सुन्दर लक्षण किया है—

स्याद्वादः सर्वथैकान्त-त्यागात् किंवृत्त चिद्विधिः।
सप्तभंग नयापेक्षो, हेयादेय विशेषकः॥

स्याद्वाद सर्वथा एकान्त का त्याग—निषेध—करके कथंचित् अपेक्षा भेद से वस्तुतत्व का निर्णय करता है। और वही ही सप्तभंगी रूप नयों की अपेक्षा से, स्वभाव और परभाव द्वारा वस्तु में सत्-असत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक, और सामान्य-विशेष की व्यवस्था का प्रतिपादन करता है।

स्याद्वाद की उपयोगिता

वस्तु के यथार्थ स्वरूप निर्णय के लिए स्याद्वाद का उपयोग सर्व प्रथम है। बिना इसके वस्तु का निर्णय नहीं हो सकता। यदि हम किसी वस्तु को उसके किसी एक धर्म की मुख्यता से एक ही रूप मान लें, और उसके समस्त धर्मों

का अपलाप करदें, तो संसार का व्यवहार तक नहीं चल सकता; वस्तु का निर्णय तो बहुत दूर की बात है। उदाहरणार्थ–यदि हम किसी मनुष्य को 'मामा' कहते हैं, तो क्या वह संसार के सभी मनुष्यों का मामा है? उत्तर में कहना पड़ेगा कि नहीं। किन्तु किसी की अपेक्षा से वह चाचा भी है, किसी की अपेक्षा से भाई भी है आदि। इसी प्रकार एक अखण्ड अनन्त धर्म रूप वस्तु को भी किसी एक धर्म की मुख्यता से उस एक रूप कहना अयुक्त है, किन्तु भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से उसे नाना रूप ही मानना सर्वथा न्याय संगत है।

इतनी प्रारम्भिक भूमिका के बाद अब मैं अपने विषय पर आता हूँ, और भिन्न भिन्न दर्शनों के ग्रन्थों का अवतरण देकर यह दिखाने का यत्न करता हूं, कि भारतीय प्रसिद्ध जैनेतर विद्वानों ने भी "स्याद्वाद" का अपने यहां कहां तक उपयोग किया है।

नित्यानित्य विचार

जैन दर्शन की दृष्टि से प्रत्येक वस्तु द्रव्य अपेक्षा नित्य एवं पर्याय अपेक्षा अनित्य है। पर्याय–उत्पाद और व्यय स्वभाव वाली होती है जोकि वस्तुमें अनित्यता सिद्ध करती है, साथ ही उत्पाद व्यय से वस्तु में हमें उसकी स्थिति का—ध्रुवता का—भी प्रत्यक्ष अनुभव होता है। यही स्थिरता—ध्रुवता—वस्तु में नित्य धर्म का अस्तित्व सिद्ध करती है। इस प्रकार संक्षेप में वस्तु उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त हुआ करती है, जैसा कि उमास्वामि ने कहा है—"उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तं सत्"।

पतञ्जलि महाभाष्य

महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य के पशपशाह्नि जैन दर्शन के उक्त सिद्धान्त का निम्नलि शब्दों में कितना अच्छा विवेचन किया है :—

द्रव्यं नित्यमाकृतिरनित्या, सुवर्णं कयाचि कृत्या युक्तंपिंडो भवति, पिण्डाकृतिमुपमृद्य रुच क्रियन्ते, रुचकाकृति मुपमृद्य कटकाः क्रि कटकामृति मुपमृद्य स्वस्तिकाः क्रियन्ते, पुनरा स्वर्णपिण्डः पुनरपरयाऽऽकृत्या युक्तः खदिर सदृशो कुण्डलेभवतः। आकृतिरन्याचान्याचभ द्रव्यं पुनस्तदेव, आकृत्युपमर्देन द्रव्यमेवावशिष्य

मीमांसा श्लोकवार्तिक

मीमांसा दर्शन के उद्भट विद्वान् कुमारि ने भी पदार्थों के इस उत्पाद व्यय ध्रौव्यस स्वीकार किया है; देखिए—

१–वर्द्धमानकभंगेच, रुचकः क्रियते यदा।
तदापूर्वार्थिनः शोकः, प्रीतिश्चाप्युत्तरार्थि
२–हेमार्थिनस्तुमाध्यस्थ्यं तस्माद्वस्तुभयात्म
नोत्पादस्थितिभंगाना, मभावे स्यान्मतित्र
३–न नाशेन बिना शोको, नोत्पादेन बिना सु
स्थित्या विना न माध्यस्थ्यं तेनसामान्य वि
—मीमांसा श्लोकवार्तिक पृष्ठ ६१९,
सं० २१, २२

कुमारिलभट्ट का उक्त सिद्धान्त जैनदर्श तो अनुकूल है ही, साथ ही वह वर्णनशैली स्वामी समन्तभद्राचार्य का कितना अधिक करण करता है, यह देवागमस्तोत्र के निम्नलि श्लोकों से स्पष्ट विदित हो जाता है। पाठ

* आवश्यक निवेदन—यहां पर भी एवं आगे भी लेख विस्तार भय से मैं किसी भी उद्धरण का अ दूँगा। पाठक स्वयं ही समझने का यत्न करें। —लेखक

इस बात का ध्यान रहे कि कुमारिलभट्ट से स्वामी समन्तभद्र पांच शताब्दी पूर्व हो चुके हैं। इससे निश्चित है कि स्वामी समन्तभद्र के समन्त —भद्र—स्याद्वाद का प्रभाव उस समय के सभी दर्शनों पर पड़ा था। अस्तु, वे श्लोक ये हैं—

१-घटमौलि सुवर्णार्थी, नाशोत्पादस्थिति स्वयम्।
शोक प्रमोदमाध्यस्थ्यं, जनोयाति सहेतुकम्॥५९॥

२-पयोव्रतो न दध्यत्ति, न पयोत्ति दधिव्रतः।
अगोरस व्रतो नोभे, तस्मात्तत्वं त्रयात्मकम्॥६०॥

—देवागम स्तोत्र।

गंभीर निरीक्षण से पाठक यह अनुभव किए बिना न रहेंगे कि स्वामी समन्तभद्र के सूत्रात्मक श्लोकों की व्याख्या रूप ही कुमारिलभट्ट ने व्याख्यान किया है।

सत्-असत्-विचार

सम्पूर्ण चेतन और अचेतन पदार्थ, स्वरूप से स्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव से सत् हैं और पररूप से पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से असत् स्वरूप हैं। जैसे घट अपने, द्रव्य पुद्गल मृत्तिका, क्षेत्र, इस स्थान, काल वर्तमान एवं भाव लाल काला आदि की अपेक्षा से तो 'है'—सत् स्वरूप है—और वही पर से—अन्य पटादिक के द्रव्य क्षेत्र काल भाव से—'नहीं' है, असत्रूप है। दोनों में से किसी एक रूप मानने से वस्तु या तो सर्वात्मक हो जायगी, अथवा लोक व्यवहार का अभाव हो जायगा। इसलिए दोनों रूप ही वस्तु को मानना आवश्यक है। इसी लिए श्री समन्तभद्राचार्य ने कहा है कि—

सदेव सर्वं कोनेच्छेत्, स्वरूपादिचतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते॥ १५॥

इस श्लोक का अन्तिम चरण बहुत महत्व का है; आचार्य कहते हैं कि यदि उभयात्मक वस्तु न मानोगे, तो पदार्थ की व्यवस्था ही नहीं हो सकती है।

वैशेषिक दर्शन।

महर्षि कणादने अन्योन्याभाव के निरूपण में भी उक्त उभयरूप वस्तु को ही स्वीकार किया है—

सच्चासत्। यच्चान्यदसदतस्तदसत्।

—वैशेषिक दर्शन अ० ९ आ० १ सू० ४, ५

उपस्कार—"....यत्र सदेव घटादि असदिति व्यवह्रियते, तत्र तादात्म्याभावः प्रतीयते। भवति हि असन्नश्वो गवात्मना। असन् गौरश्वात्मना, असन् पटो घटात्मना इत्यादिः। पृ० ३१३।

भाष्य-तदेवं रूपान्तरेण सदप्यन्येन रूपेणासद् भवतीत्युक्तम्॥ पृ० ३१५।

न्याय दर्शन।

गौतम ऋषि के न्याय सूत्रों पर अनेकों प्राचीन एवं अर्वाचीन टीकायें उपलब्ध हैं। जिसमें वैदिक वृत्ति में "कर्म से उत्पन्न होने वाला फल उत्पत्ति के पूर्व सत् है अथवा असत्?" इस प्रश्न के उत्तर में लिखा है कि—

'उत्पादव्यय दर्शनात्' —न्या० ४-१-४९

व्याख्या—प्राङ् निष्पत्तेः सदसदितिचानुवर्तते फल सम्बन्धात् पूर्ववत् निष्पत्तेः प्राक् फलं कार्यं, सदसदिति वेदितव्यम्। कुतः 'उत्पाद व्यय दर्शनात्'। तदुत्पत्ति विनाशयोरुपलभ्यमानत्वात्। चेदुत्पत्तेः प्राक् कार्यमसद्भवेत्-न जातूत्पद्येत। असतः शश शृंगादेरुत्पत्स्यदर्शनात्। सच्चेत् न कदाचिद्विनश्येत्। पुरस्तात् सतः पश्चादपि सत्व-

नियमेन विनाशासंभवात् । उत्पद्यते विनश्यतिच कार्यं, तस्मात् भवति प्रतिपत्तिर्नून मेतदुत्पत्तेः प्राक् नासदस्ति,नापिसत्,किन्तु सदसदिति ॥४६॥

वैदिकी वृत्ति ॥

पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि कितने उत्तम प्रकार से वृत्तिकार ने सत्-असद्-उभयात्मक वस्तु को स्वीकार किया है, जोकि जैन दर्शन के बिलकुल अनुरूप ही है ।

भेदाभेद विचार

द्रव्य से पर्याय, गुण से गुणी अथवा धर्म से धर्मी कथंचित् अपने संज्ञा लक्षणादि से भिन्न हैं, और आधारादि की अपेक्षा अभिन्न हैं । यह जैन-दर्शन का प्रसिद्ध कथन है । इसीको स्वामी समन्त भद्र ने कहा है—

प्रमाणगोचरौ सन्तौ, भेदाभेदौ न संवृती ।
तावेकत्राविरुद्धौते गुण मुख्य विवक्षया ॥ ३६ ॥

एक वस्तु में किसी दृष्टि से भेद एवं किसी दृष्टि से अभेद प्रमाण सिद्ध ही हैं, काल्पनिक नहीं । हां, इनमें कभी कोई प्रधान, तो दूसरा गौण हो जाता है ।

वेदान्त दर्शन ।

व्यास प्रणीत ब्रह्म सूत्रों पर भास्कराचार्य रचितभाष्य में भेदाभेद का विचार करते हुए "युक्तेः शब्दान्तराच्च" (२—१—१८) सूत्र पर लिखा है कि—

अवस्था तद्वतोश्च नात्यन्त भेदो नहि शुक्ल पटयोर्धर्म धर्मिणो रत्यन्तभेदः, किन्तु एकमेव वस्तु, नहिनिर्गुणं नाम द्रव्यमस्ति, नहि निर्द्रव्यो गुणोऽस्ति, तथोपलब्धेः, उपलब्धिश्च भेदाभेदव्यवस्थायां प्रमाणं, प्रमाणव्यवहारिणाम् । तथा कार्य कारणयोर्भेदाभेदावनुभूयेते, अभेदधर्मश्च भेदो यथा महोदधेरभेदः स एव तरंगाद्यात्मनां वर्तमानो भेद इत्युच्यते । नहि तरंगादयः पाषाणादिषुदृश्यन्ते। तस्यैव ताः शक्तयः, शक्ति शक्तिमतोश्चयानन्यत्व-मन्यत्वं चोपलभ्यते । पृ० १०१

अद्वैतवाद

अद्वैत जैसे अभिन्नवाद में भी भेदाभेद की चर्चा का स्पष्ट वर्णन देखने में आता है । विद्यारण्य स्वामी अपने ग्रन्थ में कार्य कारण का विचार करते हुए लिखते हैं कि—

स घटो नोमृदो भिन्नो, वियोगे सत्यनीक्षणात् ।
नाप्यभिन्नः पुरा पिण्ड दशायामन वेक्षणात् ॥

—श्लोक ३५ ।

कितने स्पष्ट शब्दों में भेदाभेद को स्वीकार किया है ।

सामान्य-विशेष विचार

यद्यपि सांख्य, अद्वैतवादी एवं और भी अनेक मत सामान्यरूप ही पदार्थ को स्वीकार करते हैं, और बौद्धादिक विशेषरूप ही पदार्थ को स्वीकार करते हैं, किन्तु अनुभव, तर्क एवं आगम बताता है कि यथार्थ में पदार्थ सामान्य विशेषात्मक उभयरूप हैं । एक रूप मानने पर दोनों का ही अभाव सिद्ध हो जाता है । इसीलिए आचार्यों ने पदार्थ को सामान्य विशेषात्मक उभयरूप माना है—

सामान्य विशेषात्मातदर्थो विषयः ।

—परीक्षामुख अ० ४ सू० १ ।

अर्थात्—सामान्य विशेषात्मक पदार्थही प्रमाण का विषय है ।

इसी बात का उल्लेख पातञ्जलि भाष्य में भी है। जैसे—

सामान्य विशेषात्मनोर्थस्य ।

—समाधिपा० सू० ७।

सामान्य विशेष समुदायो द्रव्यम्।

—(विभू० सू० ४४)।

कुमारिलभट्ट ने भी सामान्य विशेषरूप वस्तु को स्वीकार किया है। यथा—

सर्व वस्तुषु बुद्धिश्च, व्यावृत्यनुगमात्मिका ।
जायते द्वयात्मकत्वं न, विना साचन सिद्धयति ॥५॥
अन्योन्यापेक्षिता नित्यं, स्यात्सामान्य विशेषयोः ।
विशेषाणाञ्च सामान्यं, तेचतस्य भवन्ति हि ॥ ६ ॥
निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छश विषाणवत् ।
सामान्यरहितत्वाच्च, विशेषास्तद्वदेवहि ॥ ७ ॥
तदनात्मकरूपेण, हेतू वाच्याविमौ पुनः ।
तेन नात्यन्तभेदोपि, स्यात्सामान्य विशेषयोः ॥८॥

—(पृ० ५४६, ४७, ४८)।

इन उद्धरणों से यह बिल्कुल स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि जैनदर्शन के स्याद्वाद-मार्तण्ड की प्रखर किरणें सर्व ही दर्शनों में निराबाध रूपसे प्रकाशित हो रही हैं।